# शिक्षा प्रणाली: विकल्प के चिंतन बिंदु

डॉ. हृदय कांत दीवान

विगत दो दशकों में 21वीं सदी में शिक्षा तथा इस सदी में सम्मान पूर्वक पदार्पण के लिए उठाये जाने वाले आवश्यक कदमों पर काफी चर्चा हो रही है। इस चर्चा में एक ओर इस बात पर बल दिया जा रहा है कि शिक्षा तक उन सभी की पहुंच को सुनिश्चित किया जाना चाहिए जो अब तक इससे वंचित रहे हैं और दूसरी ओर शिक्षा की गुणवत्ता एवं इसे बढ़ाने की ओर आग्रह है।

सबके लिए शिक्षा सुलभ कराने के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक कार्यक्रम सामने आए हैं जैसे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, अनौपचारिक शिक्षा तथा स्कूल जैसे कुछ ढांचे जो वास्तव में कई कारणों से स्कूल नहीं हैं। इन प्रयासों में आग्रह राज्य द्वारा ऐसी पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराने पर रहा है जिनके द्वारा लोगों को साक्षर किया जा सके। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के भी प्रयास हुए हैं पर इन सब प्रयासों में शिक्षा को बांधने का प्रयास हुआ है ताकि इसको नियंत्रित किया जा सके। शिक्षा की

गुणवत्ता को बढ़ाने के प्रयास परंपरावादी शिक्षक प्रशिक्षण में वृद्धि करने, पुस्तकों में सूचनाओं के सार में वृद्धि व अन्य विषय वस्तु में वृद्धि और विद्यालयों में प्रदर्शन सामग्री उपलब्ध कराने में इर्द-गिर्द ही सीमित रहे हैं। शिक्षकों को अनेक निर्देश दिये गये हैं जिनकी अनुपालना करना उससे अपेक्षित है, उन्हें और अच्छी तरह से सोच विचार कर बनाई गई पुख्ता समझी जाने वाली योजनाएं उपलब्ध कराई गई हैं जिन्हें वे कक्षाओं में लागू करें ऐसी अपेक्षा है। इस सबके पीछे शायद मान्यता यह रही है कि अध्यापक यह नहीं जानता उसे क्या करना है इसलिए उसे यह सब बताया जाना चाहिए। विडंबना यह है कि यह सब बताने एवं निर्धारण करने वालों को स्वयं प्राथमिक विद्यालय में कार्य करने का अनुभव नहीं होता और विभिन्न अध्यापकों के बीच, विभिन्न बच्चों के बीच या उन्हीं बच्चों में विभिन्न अवसरों पर पाई जाने वाली विभिन्नताओं के प्रति वे संवेदनशील नहीं होते। व्यवस्था संदेह पर आधारित होती है और बिना अन्य प्रश्नों पर विचार किये यह मानकर चलती है कि शिक्षकों में प्रतिबद्धता की कमी होती है। यही कारण है कि बार-बार कही गई बातों का और अनेक प्रयासों के कोई सार्थक परिणाम नहीं निकलते। अन्य प्रश्न सामाजिक गतिकी (Social Dynamics) एवं आर्थिक यथार्थता (Economic reality) के विभिन्न पक्षों से संबंधित है।

इनके कुछ उदाहरण हैं—शिक्षा के लक्ष्य इस तरह से निर्धारित किए गए हैं जिनसे बच्चों के मस्तिष्क पर विभिन्न प्रकार की तथ्यात्मक सूचनाओं एवं व्यवहार संदर्शों का भार लाद दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ये प्रयास शिक्षा व्यवस्था को एक चलनी के रूप में कार्य करने की दिशा में केंद्रित है जिससे बहुत सारे बच्चे रास्ते में छूट जाते हैं और कुछ एक को शिखर पर पहुंचने के लिए चुन लिया जाता है। चूंकि शिखर पर जगह कम होने के कारण कुछ ही लोग ठहर सकते हैं इसलिए चढ़ाई को बहुत कठिन बना दिया जाता है।

ऐसा लगता है कि विद्यालयों का एकमात्र प्रयोजन दस व्यक्तियों की पहचान करना है जो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी व्यवसायों के बारे में सोच सकें। आजादी के बाद जो थोड़े बच्चे स्कूल में जाते थे उनकी आकांक्षा यह थी कि स्कूल में जाकर अच्छी उपलब्धि हासिल करने से सफेदपोश व्यवसायों में प्रवेश आसान हो जाएगा। शिक्षा को साहब बनने से जोड़ा गया, न कि हाथ से काम करने से। इनमें कुछ अपवाद हो सकते हैं पर कुल मिलाकर शिक्षा का उद्देश्य सत्ता के उच्च शिखर पर पहुंचने में सहायता करना ही रहा है।

विगत कुछ दशकों में जैसे-जैसे शिक्षा के सार्वभौमिकरण की आकांक्षा बढ़ती गई वैसे-वैसे अधिकाधिक गांवों में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालय खोलने की मांग उठने लगी जिसे पूरा करना एक कठिन कार्य था। ऐसा लगता है भारत देश, इसमें रहने वाले लोगों और उन लोगों को जो कि शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना चाहते हैं इन सबमें इस बारे में मतैक्य नहीं है कि आखिर 'शिक्षा किस लिए?' इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न मिलने के कारण विभिन्न लोगों द्वारा सुझाए गए मार्ग दिग्भ्रमित करने वाले हैं। वर्तमान में जल्दबाजी में

प्रारंभ किए गए विरोधाभासी कार्यक्रमों को समझने का यह एक दृष्टिकोण है।

एक प्रश्न जिसका उत्तर पर्याप्त स्पष्टता पूर्वक दिया जाना चाहिए वह है शिक्षा प्रदान के पीछे प्रेरक तत्व क्या हैं? जब तक कमजोर वर्ग के सीखने वालों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के प्राप्य एवं स्वीकार्य लक्ष्यों पर बहस नहीं होती एवं इनके संदर्भ में जब तक अधिगम सामग्री (पैकेज) का निर्माण नहीं किया जाता तब तक शिक्षा के सार्वभौमिकरण की बात पर बल देना अर्थहीन है। अभी शिक्षा की प्रक्रिया में विभिन्न प्रेरक तत्व शिक्षा के विभिन्न लक्ष्यों के मार्ग में व्यवधान बन जाते हैं। इस प्रक्रिया के कुछ भागीदारों के लिए शिक्षा का लक्ष्य एक योग्य कार्यकुशल जनसमुदाय का निर्माण करना है और ऐसे जनसमुदाय का जो बाजार द्वारा निर्माण वस्तुओं का कुशल उपभोक्ता बन सके। उनकी समझ में व्यक्ति को एक समझदार उपभोक्ता बनने के लिए और उत्पादन तंत्र का एक कुशल अंग बनने के लिए शिक्षा आवश्यक है। उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य साक्षर बनाना है और कुछ संगणन के कौशल को समझना एवं एक नागरिक की भूमिका राज्य के हितों को आगे बढ़ाने में क्या हो सकती है, इसे समझना है।

इस प्रकार की धारणा ही शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का निचोड़ है। ऐसे लोग वास्तव में अपने विचारों में इतने स्पष्ट न हो यह भी संभव है, और इन पर अन्य आयामों का आवरण ढक दें। वास्तव में लक्ष्यों की अस्पष्टता ही ऐसे विचारों को जन्म देती है जिनकी क्रियान्विति संभव नहीं होती। शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले विचारों की ऐसी अस्पष्टता स दिक्कत अनुभव कर सकते हैं और वे ऐसी विचारधारा को मानने में कठिनाई भी अनुभव करें। मैं तो यह भी कहना चाहूंगा कि हममें से कई शिक्षाविद यह मान्यता रखते हैं कि शिक्षा यथास्थिति को बनाए रखने का एक साधन है।

इसके बिलकुल विपरीत शिक्षा की एक दूसरी भूमिका भी है जिसके शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले कई व्यक्ति पक्षधर हैं। उनके अनुसार शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सीखने वाले में समालोचनात्मक चिंतन एवं सभी सामाजिक-आर्थिक व अन्य प्रक्रियाओं का विश्लेक्षण कर सकने की क्षमता का विकास करना है। उनके अनुसार शिक्षा के अंतर्गत राज्य की भूमिका एवं उसके क्रियाकलापों के बारे में प्रश्न करना तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना समाहित है। वे यह तर्क रखते हैं कि शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है सीखने वाले को उसके एक प्रजातांत्रिक नागरिक के नाते अधिकारों को समझने में सहायता करना और इसमें रूचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करना ताकि उत्पादन एवं सत्ता का वितरण न्यायपूर्वक बराबरी से किया जा सके।

यदि हम शिक्षा के इन दो लक्ष्यों में विभेद करें तो एक में राज्य के विभिन्न अंगों के क्रियाकलापों का जो उसके जीवन को प्रभावित करते हैं, के विश्लेषण का प्रतिरोध और एक बड़े तंत्र का समंवित भाग बनने का आग्रह है। आपको सिखाए जाने वाले नैतिक मूल्यों को स्वीकार करना है, इस खेल के नियमों का पालन करते हुए उनसे आगे निकलना है। इस प्रक्रिया में बच्चों को क्या करना है। केवल

नैतिकता के नियमों को बताने पर बल दिया जाता है जिससे यथास्थिति को और मजबूत बनाया जा सके। स्वाभाविक है कि जैसे-जैसे विसंगतियां बढ़ती हैं और तंत्र को खतरा महसूस होता है, वैसे-वैसे नैतिकता एवं मानकों पर तथा अपने कर्तव्यों को जानने पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। स्वतंत्र चिंतन, खोजी प्रवृत्ति, साथियों के प्रति संवेदनशीलता पर आधारित वैकल्पिक मूल्य पद्धति, छोटे पैमाने पर सामाजिक परिस्थितियों में अपने विकल्प एवं तर्क चुनने के अवसर कम होते चले जाते हैं।

स्पष्ट है कि उपरोक्त दो विचारधाराएं एक दूसरे से मेल नहीं खाती और एक विचारधारा पर आधारित कार्यक्रमों को दूसरी विचारधारा रखने वाले लोगों की सहमति प्राप्त नहीं हो सकती। दोनों विचारधाराओं द्वारा प्रतिपादित वैकल्पिक लक्ष्य पूर्णतः भिन्न हैं। दोनों प्रतिपादनों में कुछ अनुशांगिक समानता हो सकती है पर उन छोटी-मोटी समानताओं से हमें दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए। दोनों मतों में विश्वास रखने वालों के शिक्षा के बारे में नजरिए में स्पष्ट अंतर है।

जैसा कि मैंने कहा कि शिक्षा से संबंधित प्रतिपादनों में विचारों का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि शिक्षा का लक्ष्य सामाजिक विश्लेषण करना नहीं है। वैसे ही कोई भी यह नहीं कहेगा कि शिक्षा समाजीकरण का साधन नहीं है और इसलिए सामाजिक नियमों को नहीं बताया जाना चाहिए। पर दोनों विचारधाराओं में अंतर आग्रह पर है और अच्छी विषयवस्तु, अच्छी कक्षा-कक्ष एवं मूल्यांकन अपेक्षाओं में है। इसके अतिरिक्त संसाधनों में एवं प्रशासन में भी अंतर है।

आगे के विश्लेषण में शिक्षा से संबंधित मुद्दों को इन दो विचारधाराओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाएगा, यह ध्यान रखते हुए कि वास्तविकता में इन दो विचारधाराओं का मिश्रित स्वरूप देखने को मिलता है। आज के परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो उन लोगों की संख्या अधिक है जो सामाजिक परिस्थितियों के विश्लेषण को आवश्यक नहीं समझते। यह कोई आकस्मिक बात नहीं है। शिक्षा के लिए धन उपलबध करवाने वालों, तथा नीचे के स्तर के वे लोग जो यह तय करते हैं कि यह पैसा कहां व कैसे खर्च करना है साथ ही वे आर्थिक ताकतें जो नौकरियों के बाजार को नियंत्रित करती हैं इस बात पर दबाव डालती हैं कि शिक्षा ऐसी प्रक्रिया बनी रहे जिसमें भेद-भाव हो और उन्हीं बच्चों पर ध्यान दिया जाए जो इस पिरामिड के शिखर पर पहुंच सकते हों, उन बच्चों पर विशेष ध्यान दिए बगैर जो कमजोर हैं।

इन सब तथ्यों के संदर्भ में देखें कि सब बच्चों को शिक्षित करने के लिए जो खर्च किया जा रहा है वह हमें कहां ले जा रहा है। आज की परिस्थितियों में जिन लोगों को शिक्षित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है उनके व जिन बच्चों को शिक्षित किया जाना है उनके हितों में टकराहट है। इस पिरामिड को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि मूल्यांकन के मानदंड उनके पक्ष में ऐसे बनाए जाएं जिनसे उनको लाभ मिल सकें जो अतिरिक्त कोचिंग की व्यवस्था कर सकते हों या जो अधिक संपन्न हों। कक्षाओं में अमूर्त सिद्धांतों पर या उन चीजों पर

अधिक बल दिया जाएगा जो शिक्षित किए जाने वाले समुदाय के जीवन में कोई वास्ता नहीं रखती है। उन लोगों के बच्चों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए जो एक प्रांत से दूसरे प्रांत में स्थानांतरण पर जाते हैं या कहीं भी किसी विद्यालय में पढ़ने में कठिनाई न हो या अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों को ध्यान में रखकर समाज के सत्तावान लोगों के पक्ष में समाज के एक बड़े वर्ग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को नजरअंदाज कर दिया जाता है। कमजोर वर्गों में से भी वे लोग जो सत्ता हथियाना चाहते हैं एक समान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों की हिमायत करते हैं। सबके लिए एक जैसी सुविधाओं और वित्तीय व्यवस्था पर जोर नहीं दिया जाता। सब बच्चों को एक जैसा सीखने के अवसर उपलब्ध कराने पर दबाव नहीं डाला जाता। पर एक जैसे पाठ्यक्रम, एक जैसी पाठ्यपुस्तकों और एक ही शिक्षण माध्यम पर बल दिया जाता है।

हमारे देश में शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय तो बहुत कम है ही पर हमारे देश में प्रति बच्चे शिक्षा पर व्यय कुछ अन्य विकासशील देशों की तुलना में भी कम है। भारत और चीन के प्रति बच्चे शिक्षा पर व्यय में कोई तुलना ही नहीं की जा सकती जबकि चीन में बच्चों की संख्या बहुत अधिक है। यही पूरी कहानी नहीं है। हमारे देश में भी विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में, विभिन्न क्षेत्रों में भी शिक्षा पर खर्च में बहुत अंतर है। समाज के बड़े वर्ग के लिए विद्यालयों में न्यूनतम साधन सुविधाओं पर बल दिया जा रहा है, बहुत से अनावश्यक कार्यक्रमों के सिवा कम से कम समय शिक्षण कार्य के द्वारा बच्चों को केवल साक्षरता एवं गणना सीखने पर बल दिया जाता है। और विडंबना यह है कि समानता के नाम पर इन न्यूनतम साधन सुविधाओं वाले विद्यालयों के बच्चों के लिए भी वही पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें निर्धारित की जाती हैं जो अन्य बच्चों के लिए होती हैं। जो बच्चे स्कूलों में नहीं जा सकते, जिनका शिक्षा के प्रति कोई रूझान नहीं है, उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे न्यूनतम सुविधा वाले स्कूलनुमा ढांचों में कम समय बिताकर, कम शैक्षिक योग्यता रखने वाले शिक्षकों से एवं कम वेतन प्राप्त शिक्षकों से उतनी ही बातें उन्हीं किताबों और उन्हीं शिक्षण पद्धतियों से याद रख-रख लेंगे, जो अच्छे विद्यालयों में जाने वाले और अधिक खर्च कर सकने वाले बच्चे याद रखते हैं। इन दोनों श्रेणी के बच्चों के लिए शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उनकी जिंदगी से बहुत अधिक संबंध नहीं होता। यह एक अमूर्त चीज है जिसे उन पर थोपा जाता है।

हाल ही में शिक्षा की गुणवत्ता और निवेश पर बहुत चर्चा हो रही है। इन सबमें एक तत्व की समानता है। ये लोग साधन सुविधाओं और वेतन पर बहुत अधिक निवेश के पक्षधर नहीं है। इस तथ्य को कई तरह से विश्लेषित किया जा सकता है, पर एक महत्वपूर्ण तथ्य नजरअंदाज नहीं किया जा सकता वह यह कि साधन सुविधाओं और अध्यापकों के वेतन पर अधिक निवेश का अर्थ उन बच्चों पर निवेश होगा जिनके विद्यालयों में साधन सुविधाओं और शिक्षकों का अभाव है, बनिस्पत

महंगे चिकने कागजों पर सब बच्चों के लिए छपी पुस्तकों पर किए खर्च से जिन बच्चों में से अधिकांश बच्चे पुस्तकों पर ज्यादा व्यय कर सकते हैं। प्रश्न यह है कि उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का उपयोग बच्चों के लिए एक आकर्षक विद्यालय उपलब्ध कराने हेतु कैसे किया जाए। आकर्षण विद्यालयों के कई घटक हैं। ये हैं साधन सुविधाएं अधिगम सामग्री, शिक्षा के लक्ष्य और बच्चे और उसके परिवार के प्रति आदर।

उपलब्ध स्थानों का उपयोग करते हुए यह संभव बनाना हमारे सामने एक चुनौती है। ऐसा नहीं है कि शिक्षा ढांचा एक तरह का ही होना संभव है, और शिक्षा की व्याख्या किन्हीं प्रकार से नहीं की जा सकती और इसे मूर्त रूप में उपलब्ध नहीं कराया जा सकता या इसमें अंतर्विरोध नहीं है। शिक्षा के ढांचे में विकल्पों की खोज अंतर्निहित है। इन विकल्पों की शिक्षा क्षेत्र के अंदर के लोगों या बाहर के कई लोगों द्वारा आलोचना की जा सकती है परंतु तंत्र के अंदर व तंत्र के बाहर कुछ लोग इन विकल्पों के पक्षधर भी मिल जाएंगे। समस्याओं के उत्तर ढूंढना इतना सरल नहीं है। ऐसा नहीं है कि इन विकल्पों में ऐसे उत्तर मिल जाएंगे जो सार्वभौमिक हों, हर परिस्थिति में लागू किए जा सकें। वास्तव में शिक्षा के सिद्धांतों का निर्माण हर क्षेत्र के लिए अलग से वहां के लोगों की भागीदारी से एवं उनकी सृजनात्मकता एवं प्रतिबद्धता का उपयोग करते हुए होना चाहिए। शिक्षा को कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए सार्थक बनाने का तरीका है शिक्षा तंत्र में उनके लिए उचित जगह बनाना। जिस स्थान की हम बात कर रहे हैं वह संबंधित है बच्चे व शिक्षक के आलोचनात्मक दृष्टिकोण, सृजनात्मकता, समझ एवं क्रियात्मकता से। इसमें निहित है कक्षा-कक्ष के वातावरण को सूचनाओं एवं नैतिकता के नियमों के वर्चस्व से मुक्त करना एवं एक चिंतनशील बच्चे के लिए सार्थक बनाना।

हम चर्चा को आगे बढ़ाएं उससे पहले थोड़ा यह सोचना उचित होगा कि अध्यापक और शिक्षक के लिए अधिक स्थान वाले विकल्प से हमारा आशय क्या है जिसमें बाल छात्रों के मस्तिष्क में संप्रत्ययों का विकास उनके माहौल के संदर्भ में किया जा सके। आज का विज्ञान का पाठ्यक्रम देखें तो नजर आयेगा कि इसमें बच्चों से बहुत से अमूर्त कथनों, असंबद्ध सूचनाओं को याद करने की अपेक्षा की जाती है। प्राथमिक विद्यालयों की पाठ्यपुस्तकें 'भारी' होती जा रही हैं, क्योंकि इनमें उच्च कक्षाओं की सामग्री को स्थानांतरित किया जा रहा है ताकि तथाकथित ज्ञान के विस्फोट का मुकाबला किया जा सके।

इसमें बच्चों के सामने सूचनाएं एवं तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है, बगैर इसकी परवाह किए कि बच्चे में इन्हें समझने की परिपक्वता है या नहीं। विषय वस्तु को बराबर भागों में विभाजित कर रख दिया जाता है। इसका जरा भी ध्यान नहीं किया जाता कि पाठ्यक्रम में एक संप्रत्ययात्मक एवं शिक्षण शास्त्र पर आधारित तारतम्य होना चाहिए। अधिकतर यह धारणा रहती है कि बच्चों को सब कुछ महत्वपूर्ण बताया जाना चाहिए, ऐसी लंबी एवं बिखरी हुई सूची में से कोई चयन नहीं किया जा

सकता या छोड़ा नहीं जा सकता। सूचनाओं के इस वर्चस्व के कारण पाठ्यपुस्तकों में इन विचारों को विस्तार पूर्वक बच्चों की सुविधानुसार समझाने के लिए स्थान ही नहीं होगा। फलस्वरूप अति सरलीकरण करते हुए अधकचरे रूप में अनुपयुक्त शब्दावली का प्रयोग करते हुए अमूर्त विचारों को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। कक्षा में बच्चों को विषय से संबंधित संप्रयात्मक सरंचनाएं विकसित करने का, प्रयोग करने का या ईमानदारी से किए गए प्रयोग देखने का समय ही नहीं मिलता।

आजकल की पाठ्य पुस्तकों में दिए गए अधिकांश प्रयोग ऐसे होते हैं जिन्हें करके नहीं देखा गया होता है। इधर-उधर से उठाकर पुस्तकों में प्रयोग समाविष्ठ कर लिए जाते हैं, उनकी विश्वसनीयता की जांच किए बगैर। पुस्तकों की सामग्री में दी गई सूचनाएं बच्चों के लिए नई होनी चाहिए और जिनका बच्चों के अनुभव से कोई संबंध होना आवश्यक नहीं, ना ही किसी तरह से बच्चे कक्षा की बात को अपने पर्यावरण से संबंधित कर पाते हैं। पुस्तक और कक्षा का कार्यक्रम अपरिचित तकनीकी शब्दों, परिभाषाओं और तथ्यों से भरा होता है जिन्हें बच्चों को याद करना होता है।

इसका विकल्प यह है कि बच्चों के दिमाग में विषय से संबंधित एक संप्रयात्मक संरचना का विकास किया जाए और विज्ञान को करके देखने की जिज्ञासा निर्माण की जाए। विज्ञान सीखने का प्रयोजन है इसे जीवन के संबंध में काम में लेना तथा और अधिक विज्ञान सीखना ताकि उच्च अध्ययन संस्थाओं में उच्च कोटि का कार्य किया जा सके। इसके अतिरिक्त यह भी कि समलोचनात्मक दृष्टि पैदा हो और विषय की आधारभूत संप्रयात्मक संरचना समझ में आ सके। वैकल्पिक शिक्षण पद्धति में बच्चों को निरीक्षण करने एवं अपने अनुभवों के आधार पर अपने समुदाय के लिए सामान्यीकरण करने पर बल दिया जाना चाहिए। अतः विज्ञान कक्षों में यह आवश्यक है कि बच्चों को यह अवसर मिले कि वे प्रयोग करें, निरीक्षण करें, दत्त विश्लेषण करें, किसी कथन को समझाने या गलत सिद्ध करने के लिए तर्क दें। इन सबके सूचनात्मक भार कम करने और परीक्षा पद्धति के लिए अभिप्रेत अर्थ देखना कठिन नहीं है।

सामाजिक विज्ञान में यह कार्य अधिक नहीं तो फिर भी कठिन है। समाज विज्ञान प्राथमिक स्तर पर याद की हुई परिभाषाओं, नक्शों और नैतिकता के नियमों के रूप में उभर कर सामने आता है। इसका वैकल्पिक रूप क्या हो सकता है? वैकल्पिक रूप में सामाजिक विज्ञान संप्रत्ययात्मक संरचना के रूप में तथा संरचना क्यों बनाई गई है इसके कारणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

बच्चों में सामाजिक विज्ञान की विषय वस्तु को समझने की भी क्षमता होनी चाहिए जैसे नक्शे आदि, उनमें ऐतिहासिक काल का परिप्रेक्ष्य भी विकसित होना चाहिए और अपने इर्द-गिर्द भी सामाजिक घटनाओं को उनको सिखाए गए संप्रत्ययों के संदर्भ में विश्लेषित किया जाना चाहिए। साथ ही अपने अनुभवों को कुछ वैयाक्तिक अध्ययनों (case studies) या अन्य अनुभवों से मिलान कर देखना चाहिए। समाज विज्ञान सीखने वाले बच्चों में वे आधारभूत क्षमताएं एवं समझ होनी चाहिए जिससे कि वह एक

स्वतंत्र सीखने वाला व्यक्ति बन सके और विद्यालय की शिक्षा को विद्यालय से बाहर काम में ले सकें और समाज के साथ अन्योन्यक्रिया करते हुए सतत् सीखता रहे।

गणित में भी मूलभूत मुद्दे सामाजिक विज्ञान और विज्ञान जैसे ही हैं। गणित में शिक्षा के तर्क को ही अपनाने पर बल दिया जाता है बनिस्पत स्वयं तर्क करने के, और अधिक काम करने पर आग्रह होता है। आज की कक्षाओं में सवालों को शीघ्र हल करने के गुण सिखाए जाते हैं। यह भले ही ऊपर से बहुत उपयोगी लगे पर इससे बच्चे की गणित सीखने की क्षमता को जो नुकसान होता है वह बहुत अधिक है। बच्चों में गणित के मूलभूत संप्रत्ययों एवं स्वयंसिद्धियों की समझ पैदा नहीं होती। बच्चे ही नहीं शिक्षक भी इन गुरों के पदों पर कई बार नहीं समझा पाते। अतः गणित एक बिना आधार के एवं जटिल नियमों का विषय बन जाता है बजाय एक तर्क पूर्ण विषय के। पाठ्यक्रम में दिए निष्कर्ष एवं पाठ्य सामग्री के उपयुक्त अभ्यास के द्वारा समझाने की बजाय एवं बच्चों में अपनी संप्रत्ययी संरचना निर्माण करने की बजाय उसे याद करने की विषय वस्तु के रूप में बच्चों पर लाद दिया जाता है। पूरे कार्यक्रम में बच्चों को स्वतंत्र चिंतन का या अध्यापक द्वारा बताई गई विधियों के सिवाय दूसरी विधियां सोचने का अवसर ही नहीं मिलता। कक्षा की प्रक्रिया में बच्चे के गलत या सही उत्तर का पता लगाने का ही प्रयास होता है न कि उस प्रक्रिया का जिसे बच्चे ने हल करने में अपनाया है। गणित के वैकल्पिक प्रयासों में ध्यान केंद्रित होता है अर्थ समझने, तार्किक चिंतन पर बच्चे द्वारा उसकी मानसिक क्रियाओं को सुव्यवस्थित करने और अपनी संप्रत्ययी संरचना को भाषा में व्यक्त करने पर बल दिया जाता है। वैकल्पिक विधियों में समस्याओं को सुलझाने की नई विधियां खोजने को प्रोत्साहित किया जाता है। बच्चों को कई विधियों से पढ़ाया जाता है और बच्चों के सामने नई समस्याएं रखी जाती हैं और उन्हें हल करने के तरीके ढूंढने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अतः गणित की कक्षा में बहुत अधिक खुलापन होता है और बच्चों की सहभागिता भी बहुत अधिक होती है। कक्षा के अंतर्गत चल रही प्रक्रिया में बच्चों से अपने सामान्यीकरण करने, अपने स्वयं के शीघ्र हल करने के तरीके ढूंढने की अपेक्षा की जाती है। गणित की इस वैकल्पिक विधि में आग्रह इस बात पर रहता है कि बच्चा गणित सीखने में आनंद ले उसे ध्यान से सीखे और वह जो जानता है उसे जीवन के अनुभवों से जोड़ सकें।

इस विकल्प को मजबूती से उभर कर आने के लिए विभिन्न समुदायों के बच्चों की जांच करनी होगी और उनके गणित कर सकने की क्षमता को, व समाज और संस्कृति से जो सीखते हैं उससे उन्हें जोड़ना होगा। इसको कक्षा में स्थान मिलना चाहिए और बच्चों को औपचारिक गणित को जीवन से जोड़ने का अवसर मिलना चाहिए। वे जो गणित सीखते हैं वह उनके लिए सार्थक होना चाहिए। इससे वे गणित बेहतर तरीके से सीख पाएंगे और उसका उपयोग भी जीवन में अच्छी तरह से कर पाएंगे।

भाषा शिक्षण के मुद्दे जो और भी कठिन हैं

क्योंकि इसमें अंतराल बहुत है और गलत दिशा में प्रयास केंद्रित है। वर्तमान भाषा शिक्षण में बच्चे की गलतियां सुधारने और भाषा की शुद्धता को बनाए रखने पर अधिक ध्यान दिया जाता है। भाषा शिक्षण दूसरे विषयों से अलग हो जाता है, साहित्य से भी। प्राथमिक कक्षाओं में आग्रह केवल लिपि, व्याकरण और उच्चारण पर होता है और आगे की कक्षाओं में शास्त्रीय और नैतिक संदेशों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बच्चे की अपनी भाषा को लांछित किया जाता है। उनकी भाषा, उनकी संस्कृति, उनके इतिहास और उनके अनुभवों को कक्षा से बाहर रखा जाता है। छात्रों द्वारा भाषा काम में लेने की बजाय अध्यापकों के प्रयास त्रुटियां निकालने और विचारों को प्रस्तुत करने के अधिक होते हैं। विचार, संप्रत्यय और अर्थ समझने की बात पीछे छूट जाती है।

वैकल्पिक प्रयासों में सामान्यतः बल प्रथम भाषा सीखने पर दिया जाता है जो सामान्यतः बच्चे की मातृभाषा से काफी भिन्न होता है और इसलिए उसे द्वितीय भाषा के रूप में ही देखा जा सकता है। वैकल्पिक तरीके से बच्चों को भाषा मुक्त रूप से बिना किसी भय के काम में लेने को प्रोत्साहित किया जाता है। बच्चा भाषा को विभिन्न परिस्थितियों में काम में लेता है जो उसे सोचने, तर्क करने निरीक्षण करने और अपने अनुभवों या विचारों को इस प्रकार व्यवस्थित करने का अवसर प्रदान करती है ताकि दूसरे लोग उन्हें समझ सकें। केवल वर्तनी और उच्चारण पर आग्रह देने के स्थान पर ध्यान इस बात पर केंद्रित किया जाता है कि बच्चा जो पढ़ रहा है, सुन रहा है या बोल रहा है अथवा लिख रहा है उसे ठीक से समझ ले। बहुत से वैकल्पिक प्रयासों में यह सोच निहित है कि बच्चे द्वारा प्रारंभ में की गई त्रुटियां आगे चलकर अपने आप दूर हो जाती हैं यदि उसे बिना किसी भय या झिझक के भाषा को काम में लेने के पर्याप्त अवसर दिए जाएं। इन वैकल्पिक प्रयासों से इस बात का एहसास होता है कि कई बच्चों को भाषा सीखने में कठिनाई इस कारण होती है कि उनकी भाषा और संस्कृति को हीन समझा जाता है। और शिक्षकों के अभिनवन कार्यक्रम में इस बात पर चर्चा भी की जाती है। इन प्रयासों में काम में ली जाने वाली सामग्री में भी प्रथम भाषा के साथ बच्चों द्वारा काम में ली जाने वाली भाषा का भी प्रयोग होता है। अपेक्षा यह होती है कि शिक्षक भी बच्चों की भाषा सीखेगा।

इससे हम किस ओर जाते हैं? जैसा कि मैंने कहा वर्तमान भाषा शिक्षण व्याकरण, शब्दार्थ, सुलेख, शुद्ध उच्चारण और शुद्ध वर्तनी पर केंद्रित है बिना इसके जाने की शुद्ध का अर्थ क्या है इसका आधार क्या है? निबंध और पत्र लेखन में भी शिक्षक द्वारा लिखाए गए प्रारूप को याद करने पर आग्रह अधिक होता है। विषय वस्तु को कक्षा में समझा दिया जाता है और बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि समझाई गई बातों को परीक्षा के लिए याद कर लें और पाठ के अंत में दिए गए प्रश्नों के उत्तरों को भी याद करवा दिया जाता है। बच्चा पाठ पढ़े उसे समझे, तर्कपूर्ण उत्तर लिखे, किसी अधूरी कहानी को पूरा करें या उसने जो देखा है उसका वर्णन अपने शब्दों में लिखे इस दिशा में कोई प्रयास नहीं

होते। नए गद्यांश बच्चों के लिए कठिन समझे जाते हैं और पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु अरुचिकर एवं अमूर्त होती है।

मैंने संक्षेप में विकल्प की दिशा व पाठ्यक्रम प्रमुख संज्ञानात्मक पक्षों का विवरण प्रस्तुत किया है। जैसा कि आपने देखा होगा, जो कहा गया है उसमें से अधिकांश का बच्चे के भावात्मक विकास पर प्रभाव होता है यह जो बड़े प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं ये अर्थव्यवस्था, समाजशास्त्र और शिक्षा तंत्र से जुड़े और बड़े प्रश्नों में समाहित है।

वैकल्पिक प्रयासों में इनका उल्लेख है पर इस बात का भी एहसास है कि इन सबके हल में कितनी जटिलताएं हैं। कुछ पक्षों का समावेश हमने हमारी चर्चा में जान बूझकर नहीं किया है। वे इस बिंदु से संबंधित हैं कि शिक्षा में परिवर्तन की प्रक्रिया को व्यापक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से अलग नहीं किया जा सकता। अकेले या मिलकर भी केवल इन प्रयासों को विद्यालयों पर असर पड़ने वाला नहीं है व्यवस्था बहुत बड़ी है। यह शिक्षक को व उसके विचारों को अपनी समझ और इच्छा शक्ति घोप कर बहुत सूक्ष्म बना देती है। यह शक और नियंत्रण पर आधारित है। अब समय आ गया है कि हम इन प्रश्नों को गंभीरता से लें और हम जो हैं या हमारे पास जो है उसका अधिक से अधिक उपयोग बच्चों के हित में करें। इसके लिए हम सबको अपने गरेबां में झांकने की आवश्यकता है और इन असमानताओं के बरकरार रखने में तथा अनेक भाषाओं और संस्कृतियों को निरर्थक और उन्हें दूसरे दर्जे का लेबल लगाने में हमारी क्या भूमिका हैं इस बारे में सोचने की आवश्यकता है। हमें कई समुदायों को बुद्धिहीन, रूचिहीन, सुस्त या ऐसे अन्य संबोधनों से वर्णन कर स्वीकार करने में हमारी क्या भूमिका है इस पर भी सोचना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि इस व्यवस्था को अधिक समतापूर्ण कैसे बनाया जा सकता है जिसमें सीखने वाले के अनुभवों एवं संस्कृति को पर्याप्त स्थान मिल सकें।